थी-अपने जवान बेटे को फूंक आने के बाद भी नहीं। असल में वह सदमा था जबकि यह सदमे से ज्यादा बेचैनी। वसीम रिजवी का मरा हुआ चेहरा उनके भीतर कहीं बहुत गहरे पैवस्त हो गया था।

-क्या बेवकूफी है! शंकरदत्त ने मन-ही-मन झल्ला कर अपने को डांटा और करवट बदल ली।

उन्होंने नींद लाने की आखिर कोशिश के तहत फिर दृढ़ता पूर्वक आंखें मूंद लीं लेकिन दूसरे ही क्षण घबरा कर आंखें खोलनी पड़ीं। रिजवी का चेहरा बुरी तरह तंग करता था। वह फिर, और फिर, बड़ी देर तक यही करते रहे लेकिन बंद आंखों में न तो नींद आ रही थी। और न खुली आंखों में.....

✷ ——————— ✷

## शानी

जन्म 16 मई 1933, जगदलपुर - मध्य प्रदेश। निधन 10-2-1955 प्रारंभिक रचनाओं में आंचलिकता है लेकिन प्रतिगामता नहीं। प्रगतिशील चिंतन एवं गतिशील लेखन। अनेक कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित। पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त कई भाषाओं में अनुवाद।



# अँधेरा

**रमाकान्त**

अस्पताल के जनरल वार्ड के बाहरवाले कमरे में अपने एक दोस्त के साथ बैठा हूँ। तेज ठंड पड़ रही है। कमरे में हम लोगों के सिवा कोई नहीं हैं। हमें अभी डॉक्टर के आने का इन्तज़ार करना है। यह इन्तज़ार बुरी तरह खल रहा है मुझे। अस्पताल में मुझे कोई काम नहीं है। मेरे उस दोस्त के हाथ की हड्डी उतर गयी है, उसी की एक्स-रे रिपोर्ट डाक्टर को दिखानी है। हम काफी जल्दी आ गये हैं।

बेतरह ऊब कर मैं खिड़की से बाहर देखने लगता हूँ - आसमान गाढ़े कुहरे से भरा है, धूप बिलकुल नहीं है। अस्पताल के अहाते में लगे ताड़ की तरह दीखने वाले साइकस के दरख्त कुहरे में डूबे-डूबे से लग रहे हैं। ठंड़ी हवा के झोंके के साथ मेरी निगाह फिर कमरे में लौट आती है और अपनी बगलवाली खाली दीवाल की ओर देखने लगता हूँ।

ठंड से मेरे दोस्त की तकलीफ बढ़ गयी है। चोटवाला हाथ पट्टी के बावजूद जैसे ठिठुर गया है और उसकी उँगलियों के नाखून तक नीले पड़ रहे हैं। शायद उसका हाथ बुरी तरह टीस भी रहा है। अपने दूसरे हाथ को हथेली से वह अपनी ठिठुरी हथेली ज़ोर से दबा लेता है। दर्द के मारे उसक होंठ बुरी तरह फैले हैं, दाँत एक-दूसरे पर कस कर बैठे हैं फिर भी हल्की सिसकारी उसके मुँह से निकल जाती है।

मैं अपने दोस्त के बारे में अधिक देरी तक नहीं सोच सकता। अस्पताल

के किसी दूसरे हिस्से में एक बच्चा रो रहा है। उसकी क्रमशः धीमी और तेज़ होती आवाज कारिडर से गूँज रही है। कुछ देर बाद एकाएक उसकी आवाज बन्द हो जाती है। हम कुछ क्षण तक उसका रोना फिर शुरू होने का इन्तजार करते हैं। सारा अस्पताल खाली और सूना-सूना। जैसे अस्पताल के सारे लोग पिछली रात कहीं चले गये हों या मर गये हों।

यहीं बात मैं अपने दोस्त से कुछ मज़ाकिया लहज़े से कहता हूँ। फिर हँसने लगता हूँ, दर्द के बावजूद वह भी हँसने लगता है। पर हँसी हमें अच्छी नहीं लगती। हम फिर चुप हो जाते हैं। मैं यों ही अपने दोस्त की एक्स-रे रिपोर्टवाला कागज देखने लगता हूँ। मुझे कुछ समझ में नहीं आता। एक्स-रे प्लेट देख कर भी मैं नहीं समझ पाता कि कहाँ गड़बड़ी है। मेरा दोस्त इशारे से बताता है कि यहाँ फ्रेक्चर है। मैं कुछ न समझते हुए भी समझने का दिखावा करता हूँ।

काफी समय यों ही बीत जाता है। कहीं कुछ नहीं होता । फिर जैसे कहीं कोई आरा चलता है। 'कोई आपरेशन हो रहा है क्या?'

'पता नहीं!' मेरा दोस्त कुछ चिढ़ कर कहता है। फिर उदास आँखों से चुपचाप अपने सामने देखने लगता है। जैसे आपरेशन की बात से वह भयभीत हो गया है। फिर जैसे अपने आपको ढाढ़स बँधाना चाहता है इसलिए मुझसे ज़ोर से कहता है, 'इस तरह आपरेशन नहीं होता..... मालूम होता है कि किसी के दाँत की बोरिंग हो रही है।'

कमरे का दरवाज़ा बाहर से ठेलकर दो लोग और आ गये हैं और एक ओर खाली पड़ी बेंचों पर बैठ रहे हैं एक औरत और एक मर्द। औरत छोटे कद की है। उसकी भरी हुई गठी देह कभी बहुत स्वस्थ रही होगी। दोनों ही ढलती उमर के हैं। बैठने के बाद ही वह औरत हमसे बात शुरू करने का प्रयत्न करती है।

'क्या डॉक्टर नहीं आये हैं अभी?'

'नहीं!'



'क्या तकलीफ है? हाथ में चोट लगी है?'

'हाँ!' मेरा दोस्त कहता है। मैं चाहता हूँ कि कहूँ- वह तो आप देख रही हैं। और बातचीत का सिलसिला खतम कर दूँ। पर चुप रहता हूँ। वह औरत अब अपने साथवाले आदमी से ही बातचीत करती है। 'बड़ी देर मालूम हो रही है अभी।.....हमें बैठना होगा....रोज बैठना पड़ता है....क्यों है न!'

मैं चाहता हूँ उनकी बातचीत न सुनूँ। कोई और बात सोचूँ। उठ कर टहलूँ। सिगरेट पियूँ। पर कुछ नहीं कर पाता। नाक में अस्पताल की दवाओं की तेज़ बास घुस रही है। मेरा दिमाग इस बात की ओर पहली बार गया है। कारिडर में कुछ लोगों के चलने की आहट.....कुछ तेज़ धीमी कराहें.....और इन्तजार! मन पर भारी वजन सा कुछ छा गया है।

'हूँ!' उस औरत की किसी बात पर उसके साथ वाला आदमी कहता है।

'डॉक्टर साहब आ गये हैं.....मैंने उनकी मोटर रूकने की आवाज़ सुनी है।' औरत का स्वर तेज़ है।

'हूँ!' वह आदमी अपना एक हाथ कान तक ले जाता है। मैं समझ जाता हूँ कि उसे औरत की एक भी बात सुनायी नहीं पड़ रही है।

'इन्हें सुनायी नहीं देता।' औरत हम लोगों से कह रही है। उसका स्वर ऐसा है जैसे उसे इस बात की बड़ी खुशी है कि उसे सुनायी नहीं देता। 'इनका एक कान एकदम से खराब है।' यह जान कर कि उसे सुनायी नहीं देता वह अपनी आवाज़ जरा भी धीमा नहीं करती। 'लेकिन अपने कान के इलाज से लिए ये नहीं आये हैं, इनके पैर में खराबी है, बिजली की सेंक होगी।'

'बिजली की सेंक?' मैं यों ही पूछता हूँ।

'हाँ! हाँ बिजली की सेंक!' वह बड़ी खुशी से कहती है, 'बिजली की सेंक मेरे पैर में भी होगी।'

'क्या आप के पैर में भी खराबी है?' मै पूछता हूँ, 'आपके तो कोई खराबी नज़र नहीं आती।

जैसे उसे मेरी बात पसन्द नहीं आयी। कुछ चिढ़ कर मेरी और देखती हुई वह कहती है, 'मुझे तो जो हुआ है वह कभी ठीक ही नहीं होगा। दो साल से परेशान हूँ।

'इलाज होगा तो क्यों नहीं ठीक होगी!'

'कभी नहीं!...कभी नहीं! मैं जानती हूँ। मुझे क्या नहीं हुआ है। रोग मेरे अन्दर घर कर गया है। वह कहती है और फिर अब तक हुए अपने सारे रोगों को गिनाने लगती है....मियादी बुखार से ले कर रतौंधी तक। उसके साथवाला आदमी मेरी ओर घूरता हुआ जैसे मेरे उधर मुखातिब होने का इन्तज़ार कर रहा है। मैं उसकी ओर देखता हूँ, और उसी की तरह देखता रहता हूँ। हम कोई हरकत या संकेत भी नहीं करते। फिर उस औरत की आँख बचा कर वह धीरे से मुस्करा पड़ता है। मुझे उसकी मुस्कराहट बड़ी अजीब लगती है। क्या तकलीफ में भी आदमी मुस्करा सकता है?

दरवाज़ा फिर खुलता है। शायद वार्डब्वाय आकर डॉक्टर के यहाँ चलने के लिए कहेगा। पर नहीं। यह एक और आदमी है। वह भी अन्दर आ कर खाली बेंच पर एक तरफ बैठ जाता है। एक गहरी आह उसे छूट आती है। वह काफी मोटा है। उसका एक हाथ उसके सीने पर है। उसका चेहरा बहुत थका लग रहा है। जैसे वह वहीं गिर पड़ेगा। फिर कुछ आश्वस्त होने के बाद जैसे हम सब को सम्बोधित करता हुआ कहता है, 'बाप रे! बाहर कितनी ठंड है।' उसके मुंह से ढेर सारी भाप निकल रही है। जैसे सिगरेट का कश खींच कर वह धुआँ छोड़ रहा हो। हम में से कोई उसकी बात का जवाब नहीं देता। वह बातूनी औरत भी नहीं ।

मोटा आदमी फिर ठंड की बात कहता है और जैसे जैसे अपनी बात का प्रमाण देने के लिए गले में लपेटे मफलर को सिर के ऊपर डाल कर अपना कान भी ढँक लेता है।



'इतनी सर्दी तो नहीं है। आखिर हम लोग भी तो बैठे हैं। फिर जिसके बदन पर इतनी चर्बी हो।' बातूनी औरत हम लोगों से अपने स्वाभाविक स्वर में कहती है। उसे इस बात का ज़रा भी डर नहीं है कि वह मोटा आदमी सुन लेगा तो बुरा मानेगा लेकिन वह बुरा नहीं मानता। ऊपर से वह एकदम अप्रभावित है। फिर वह भी हमीं लोगों से कहता है, चर्बी से क्या होता है। सर्दी तो खून के गाढ़े और पतले होने के ऊपर है..... क्या अभी डाक्टर नहीं आये।

मैं कुछ बता नहीं पाता।

अस्पताल के बारे में उस औरत को ज्यादा मालूम है यह बताने से वह अपने को रोक नहीं पाती। 'पहले जो लोग अस्पताल में भर्ती हैं, डाक्टर उन्हें देखेगे। बाहरी रोगियों को बाद में। राउंड पर गये होंगे अभी।'

वह आदमी अब चुप है। बार-बार वह ज़ोर से साँस खींचने का प्रयत्न करता है पर शायद सीना जकड़ा हुआ है इसलिए अच्छी तरह साँस ले नहीं पाता और हाँफने-सा लगता है।

कमरे में अजीब-सा सन्नाटा छाया है। तेज ठंड में ठिठुरते हुए सभी लोग किसी आशंका से त्रस्त हैं।

बाहर से दरवाज़ा ठेल कर एक वार्डब्वाय आता है। मैं अपने मित्र का पुर्जा सबसे पहले देने के लिए उठता हूँ। पर वह किसी का पुर्जा नहीं लेता। हम लोगों पर एक नज़र डाल कर लौट जाता है। दरवाज़ा वह खुला ही छोड़ गया है। हममें से कोई उठ कर दरावाज़ा बंद नहीं करता।

'डाक्टर ने पुछवाया है कि काफी लोग हो गये हैं या नहीं।' बातूनी औरत ने अपनी दूसरी जानकारी हम लोगों को दी। उसकी बात सुन कर भी कोई कुछ नहीं बोलता।

एक और आदमी अन्दर आ गया है। उसको आँखों पर मोटे शीशों का चश्मा है और दायें पैर में जूते के ऊपर से रक़ाब की तरह लोहे का एक स्प्रिंग

लगा है जो घुटने के ऊपर तक चला जाता है। वह मेरी बग़ल में ही आ कर बैठता है और अपने जूते उतारने लगा है- इस तरह गोया सोने जा रहा हो। मैं पूछता हूँ, 'क्या आप लेटना चाहते हैं?'

'लेटना!' उसकी आवाज में कुछ रूखापन है, 'कौन लेटना चाहता है। भगवान जानता है, मैं अब कुछ दिन तक बिलकुल लेटना नहीं चाहता....एक साल से ज़ियादा ही बिस्तर पर लेटा रहा हूँ।' वह झोले में बहुत जतन से रखा हुआ एक चार पन्नोंवाला साप्ताहिक अखबार निकाल कर पढ़ने लगता है। उसके पढ़ने के ढंग से लगता है कि वह अखबार में छपी सारी बातें खा जाना चाहता है। वह अखबार भी कोई जातीय अखबार है- 'है है क्षत्रिय बंधु' या 'चित्रगुप्त संदेश टाइप का' - यह मैं अपनी जगह से देख कर अनुमान लगाता हूँ। फिर मेरी दिलचस्पी उसमें खतम हो जाती है। वह इतना मशगूल हो गया है पढ़ने में कि जैसे हममें से किसी से बात नहीं करना चाहता।

उसकी चुप्पी छूत की तरह फैल जाती है। सब अपने में ही खोये से हैं - अपने दर्द में, अपनी परेशानियों में। बाहर जैसे कुहरा और गाढ़ा हो गया है। साइकस के पेड़ और भी डूबे-डूबे लग रहे हैं कमरे के रोशनदान पर एक गौरैया ठिठुरी हुई दुबकी है।

खुले दरवाजे से कारिडर का थोड़ी दूर तक का हिस्सा दिखायी देता है। सारस के पंखों जैसे उजले कपड़ों में चार पाँच नर्सों का एक काफ़िला गुजर रहा है। सबसे पीछेवाली नर्स बहुत लम्बी और दुबली-पतली है।

आपरेशन थियेटर की ओर घुटनों तक लम्बी सफ़ेद एपरन पहने एक डाक्टर कुछ तेज कदमों से जा रहे हैं।

'कोई खतरनाक आपरेशन होनेवाला है।' मोटा आदमी कमरे में छायी हुई खामोशी से ऊब कर कहता है जैसे। पर कोई जवाब नहीं देता उसका। खामोशी जैसे और भारी हो जाती है जो मनहूस लगती है।



हमारे साथ बैठी हुई औरत जैसे यह मनहूसी सहन नहीं कर सकती। 'आपरेशन में कोई तकलीफ नहीं होती। मेरे तो तीन-तीन आपरेशन हो चुके हैं. .....' वह जैसे अपने आपको ही विश्वास दिला रही है।

मैं देखता हूँ, अस्पताल के बाहरी फाटक से एक एम्बुलेन्स भीतर आ रही है। फिर वह नजरों से ओझल हो जाती हैं - बाहर के पोर्टिको में आकर रूक गयी होगी। मुझे कमरे में बैठा रहना अच्छा नहीं लगता। अपने दोस्त से कहता हूँ, 'मैं यहीं बाहर हूँ, अभी आया,' और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कारिडर में निकल आता हूँ।

पहियेदार स्ट्रेचर पर लिटा कर लोग एक औरत को ले जा रहे हैं। गर्दन से ले कर पैर तक लाल कम्बल से ढँके हैं। गड्ढों में धँसी आँखों में अभी कुछ चमक शेष है और उसकी पुतलियाँ इधर-उधर हो रही हैं- वह देख पा रही है, पर लगता है सब कुछ देखती ही रहना चाहती है-जैसे जो कुछ देख रही है अब कभी नहीं देखेगी। क्षण भर के लिए मुझे अपने चारों ओर सब कुछ घूमता नज़र आता है, जैसे सब कुछ अभी, यहीं, इसी दम खतम हो जायगा। ज़िन्दगी का कोई चिन्ह पहचान में नहीं आता, सारी आवाजें मर गयी हैं जैसे। चाहता हूँ, वहाँ से भागूँ, भागता ही जाऊँ।

कमरे में बैठी औरत भी बाहर निकल आयी है और कुछ मुझसे कह रही है यह मैं देर से समझ पाता हूँ। 'डाक्टर आ गये हैं!' वह मुझसे कह रही है। 'अभी प्यून पुर्जा जमा करने आयेगा, आप पहले उठ कर दे दें।

कमरे में वापस आ कर मैं उसका इंतजार करने लगता हूँ। कुछ और रोगी आ गये हैं और सभी बेंचें भर गयी हैं। जहां मैं बैठा था वहाँ भी एक आदमी बैठा है मैं उससे अपनी जगह छोड़ने के लिए नहीं कहता- खड़ा-खड़ा ही अपने ठिठुरे हाथों को जेब में डाल कर गरम करने का प्रयत्न करता हूँ।

थोड़ी देर पहले जो वार्डब्वाय आया था वही शायद फिर आया है। मैं अपने दोस्त का पुर्जा देता हूँ। वह देखता है उसे, 'हाथ टूटा है! एक्स-रे की रिपोर्ट लाये

हैं।......आपको अभी रूकना होगा। पहले जरूरी रोगियों को देखेंगे डाक्टर साहब।'

'मैं रूकना नहीं चाहता।' करीब-करीब मैं चिल्ला उठता हूँ। वह मेरी ओर इस तरह देखता है गोया मैं कोई ज़िद्दी बच्चा हूँ, फिर दूसरे पुर्जे इकट्ठे करने लगता है।

कमरे में एक और औरत आ गयी है। उसके साथ एक बारह-तेरह साल की लड़की भी है। माँ-बेटी होंगी। मुझे उन दोनों में से किसी में कोई रोग समझ में नहीं आता। लोग बातें करते-करते चुप हो जाते हैं और चुप होने के बाद फिर बातें करने लगते हैं। वार्डब्वाय पुर्जे इकट्ठे करके चला गया है, लोग अपने बुलाये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मोटे आदमी से पहले से वहाँ बैठी औरत कह रही है कि डाक्टर सबसे पहले उसे ही बुलायेंगे। उसका चेहरा उतर जाता है। फिर वह दूसरी औरत से पूछती है, 'क्या हाल है तुम्हारी बेटी का अब?'

'कुछ ठीक है अब। इलाज अभी चलेगा।'

'कितने दिन?'

'करीब एक महीना!'

'ए ऽ क महीना!' बातूनी औरत चुप हो कर कुछ सोचने लगती है। जैसे याद कर रही हो कि उस लड़की का रोग उसे कभी हुआ है या नहीं।

मोटा आदमी भी एकाएक उठ कर टहलने लगता है। जैसे उसके ऊपर बहुत भारी वजन रखा है और उसे वह ढो रहा है। उसे देखते हुए सहसा मैं चौंक उठता हूँ। उसके चेहरे पर भय के भाव हैं, चेहरा स्याह हो आया है। फिर वह तेज़ क़दमों से कमरे के बाहर चला गया और कुछ देर बाद मुझे खिड़की से बाहरवाले गेट के पास उसकी क्रमशः दूर होती हुई आकृत्ति दिखायी पड़ती है। मुझे ताज्जुब होता है।



'अक्सर वह यही करता है।' वहाँ बैठी पहलेवाली औरत कहती है।' उसे अपने रोग से लगाव हो गया है। डाक्टर कहते हैं चलो-फिरो मत; नहीं तो किसी दिन रास्ते में ही....' पर यह है कि चलता है, यहाँ आता है, फिर इसी तरह बैठ कर चला जाता है। मैं यहाँ आ कर रोज़ सोचती हूँ कि वह आया है या नहीं। जब तक वह आ नहीं जाता मेरा जी करता रहता है।'

विश्वास नहीं होता मुझे कि कभी वह यहाँ नहीं भी आ सकता....

अब और अधिक रूकना अच्छा नहीं लग रहा है बाहर कारिडर में आ कर मैं उधर देखता हूँ जिधर अभी थोड़ी देर पहले पहियेदार स्ट्रेचर पर लिटायी हुई वह औरत ले जायी गयी है। उसकी टकटकी मुझे याद आती है। आँखों पर जैसे जाल-सा पड़ रहा है। मैं बेचैनी में एकदम बाहरवाले बरामदे तक चला जाता हूँ और सामने देखने लगता हूँ। साइकस के पेड़ों के बाद अस्पताल के अहाते की सींकचेदार रेलिंग है, उसके बाद सड़क। सड़क पर लोग आ-जा रहे हैं, जिन्दगी का शोरगुल हो रहा है - उसका प्रवाह मुझे अच्छा लगता है। गाढ़े कुहरे के कारण कुछ साफ दिखायी नहीं दे रहा है।

## रमाकांत

जन्म 2 दिसम्बर, 1931, निधन 6 सितम्बर 1991। प्रगतिशील साहित्य के प्रबल समर्थक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और सोवियत सूचना केंद्र में कार्यरत रहे। सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार एवं हिंदी अकादमी दिल्ली से पुरस्कृत। जुलूसवाला आदमी, छोटे-छोटे महायुद्ध, तीसरा देश उनकी प्रमुख कृतियां है।